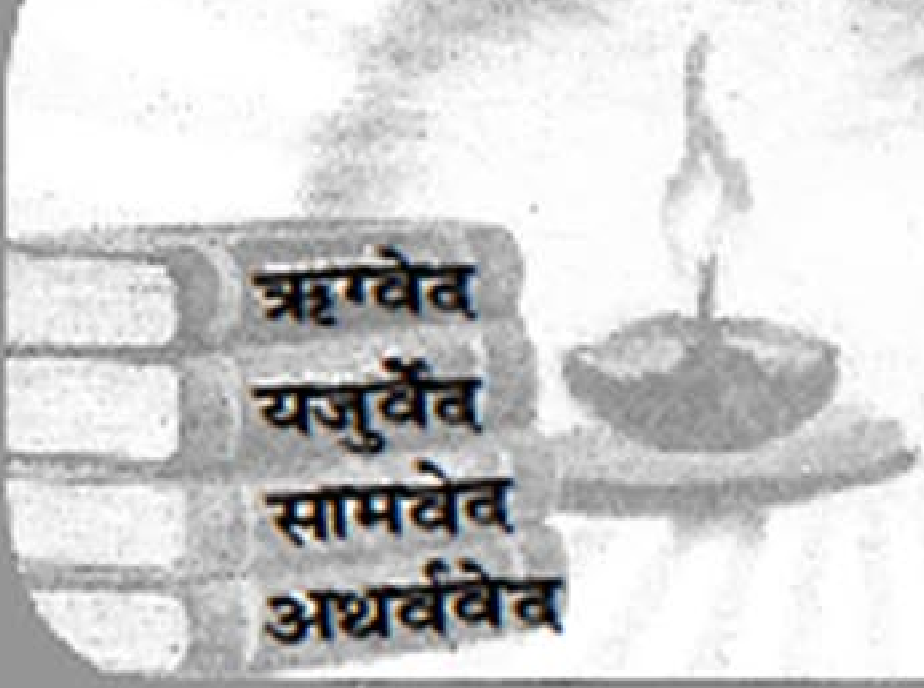

वेदोऽखिलोधर्ममूलम्

वेद प्रकाश

मासिक पत्र मूल्यः ५ रुपये अक्टूबर २०१३

कुल पृष्ठ संख्या 36

अन्तःपथ

विशेषांक	
पराविद्या के पाँच अध्याय	३ से २८
–स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	
'ब्रह्माण्ड की खोज और महर्षि दयानन्द	
–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून	२९ से ३४

रेस में जीतने वाले घोड़े, को तो पता नहीं होता कि जीत वास्तव में क्या है। वह तो अपने मालिक द्वारा दी गई तकलीफ की वजह से ही दौड़ता है, तो जीवन में जब भी आपको तकलीफ आन पड़े, और कोई मार्ग न दिखाई दे तब समझ जाइएगा कि प्रभु आपको जितवाना चाहता है।

पुस्तक समीक्षा

पं. सत्यानन्द वेदवागीश का एक नया ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। नाम है **'उणादिसूत्रलिङ्गानुशासनसूत्र-गणपाठ-प्रयोगदीपिका'** (पृष्ठ 600, मूल्य 600) रुपये, बड़ा आकार)। इस ग्रन्थ में उणादि सूत्रों के 2264 शब्दों के, लिङ्गानुशासन के 1119 शब्दों के और गण पाठ के 5875 शब्दों के अर्थात् 9258 शब्दों के प्रयोग दिये हैं। इन प्रयोगों में 2708 प्रयोग (उद्धरण) वेदों से दिये हैं। शेष अन्य ग्रन्थों से तथा अनुपलब्ध स्तोत्र वाले शब्दों के प्रयोग लेखक ने स्वरचित पद्यों में दिये है।

धुन के धनी लेखक ने गुरुवर विरजानन्द जी दण्डी के एक आदेश **"व्याकरण पढाते समय सूत्रादि के उदाहरण वेदों से दिये जायँ"** की अनुपालना में पहले 'अष्टाधायी-सूत्र-प्रयोग-दीपिका (पृ. 700), फिर 'धातुपाठप्रयोगदीपिका' (पृ. 802) को रचने के पश्चात् प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। इन तीनों की रचना का कार्य, श्रम साध्य, समय साध्य, और ऊहा साध्य था। किन्तु निरपेक्ष भाव से श्रद्धापूर्वक कार्य करने वालों के लिये सभी कुछ सहाय हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की अनेक विशेषताएँ हैं–

1. वर्णानुक्रम सूचियों की तथा अनुक्रमणियों की बहुलता। आरम्भ में उणादि सूत्रों को मूलरूपेण उद्धृत किया है। उणादि की प्रयोगदीपिका के अन्त में समस्त 2264 शब्दों की अर्थ सहित वर्णानुक्रमणिका दी है। यही क्रम लिङ्गानुशासन में भी रखा है। गणपाठ के समस्त 258 गणों की अनुक्रमणिका तथा वर्णानुक्रमणिका के पश्चात् प्रयोगदीपिका तथा अन्त में 5875 शब्दों की पृष्ठ संख्या सहित वर्णानुक्रमणिका दी है। ऐसी वर्णानुक्रमणिका पहली बार छपी है।
2. अनेक अप्रसिद्ध शब्दों के अर्थोद्घाटन हेतु 'काशकृत्स्न' धातु-पाठ में पठित तथा पाणिनीय धातु-पाठ में अपठित धातुओं का आश्रय लिया गया है। ऐसी धातुओं की संख्या 42 है। इनका विवरण लेखक ने सुविधा की दृष्टि से पुरोवाक् (भूमिका) में विस्तार से कर दिया है।
3. प्रयोगों में अनेक विशिष्ट नाम पाठको को मिलेंगे–
   (i) यन्त्र विज्ञानीय 90 ग्रन्थों के नाम (पृ. 336-341)
   (ii) लोक में प्रसिद्ध 64 कलाओं के नाम (पृ. 360-361)
   (iii) आयुर्वेद की चरक संहिता के सूत्र-स्थान में उल्लिखित 50 प्रकार की औषधियों के 500 नाम (पृ. 362-371)
   (iv) शरीर के विविध अगों के नाम (पृ. 371-372)
   (v) एशिया-यूरोप आदि महाद्वीपों के देशों के नाम (पृ.466-467) इनमें अप्रसिद्ध कात्यर्थक धातुओं के प्रयोग दिये हैं।
4. कहीं कहीं लेखक ने स्वीय ऊहा से परिष्कार भी किया है जैसे–उणादि (4.221) सूत्र पर (पृ. 168) तथा पृष्ठ 474 पर बृहस्पति तथा तस्कर शब्द के विषय में। अन्य अनेक लाभ हैं। गुरुकुल में पढ़ने-पढ़ाने वालों और संस्कृत व्याकरण में रुचि रखने वाले विद्वानों तथा संस्कृत में अनुराग रखने वालों के लिये अवश्य मेव संग्रहणीय।

प्राप्ति स्थान :

विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद,

4408, नई सड़क दिल्ली-6

दूरभाष: 01123977216, 65630255

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ६३ अंक ३ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, अक्टूबर, २०१३

सम्पा० अजयकुमार पूर्व सम्पादक : स्व० स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

विशेषांक

पराविद्या के पाँच अध्याय

–स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

मुण्डक उपनिषद् के प्रथम खण्डों में ही यह उल्लेख है कि ब्रह्मवेत्ताओं की यह मान्यता है कि विद्यायें दो प्रकार की होती है–(1) पराविद्या और अपराविद्या–**"द्वे विद्ये–परा चैवापरा च।"** (१।१४)। **अपरा विद्या** के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, अर्थात् समस्त वेद और वेदांग आते हैं–किन्तु **पराविद्या** इनसे भिन्न है। यह वह विद्या है जिसके माध्यम से अक्षर ब्रह्म, अथवा अविनाशी आत्मा जाना जाता है। जैसे वेदांग अपराविद्या हैं, उसी प्रकार उपवेद और सम्भवतया छः उपांग भी अपरा विद्या होंगे–पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, साँख–योग, न्याय–वैशेषिक, अथर्ववेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और आयुर्वेद–ये सभी अपराविद्या के अन्तर्गत हैं। फिर पराविद्या है क्या? आज के शब्दों में सभी विज्ञान और शास्त्र जिनका अध्ययन साधारणतया हमारे विज्ञान–संस्थानों में किया जाता है, समस्त भाषा–शास्त्र, जिसको मुण्डक में शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त और छन्द से इंगित किया गया है, ये अपराविद्या है। कल्प का अर्थ है यज्ञ–विद्या, और यज्ञ का अर्थ महर्षि दयानन्द के अभिप्राय से लोकहित के लिए किए गए सभी श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम् कर्म, अर्थात् रसायन, शिल्प, भौतिकी, औद्योगिकी, कृषि, पशु–पालन आदि कृत्य और इन कृत्यों से सम्बन्ध रखने वाली विद्यायें कल्प–वेदांग हैं। हमारे गुरुकुलों, आचार्यकुलों, शिक्षा और शोध –संस्थानों, प्रयोगशालाओं, वेदशालाओं में अपराविद्या का विस्तार है। अपरा विद्या का अपना एक क्षेत्र है, जिससे लगभग हम सभी परिचित है। स्थूलजगत् का यह गम्भीर अध्ययन है। स्थूल सृष्टि रचना से इसका सम्बन्ध है।

यह अपराविद्या भी परमात्मा की सृष्टि से (अपौरुषेय सृष्टि रचना से)

सम्बन्ध रखती है। अपराविद्या की पृष्ठभूमि में परब्रह्म की पूर्णकला, उसकी दया और उदारता, और उसी ब्रह्म के तपस् और ज्ञान की अभिव्यक्ति है। किन्तु स्थूल या बहिरंग होने के कारण इसे हम अपरा ही कहेंगे–यह **पराविद्या** नहीं है। अपराविद्या की गम्भीर उपलब्धियाँ गणित और भौतिकी के नियमों में अभिव्यक्त की जा सकती हैं–रसायनशास्त्र के समीकरणों में हम इन्हें कुछ बाँध सकते हैं। प्राणिशास्त्र के विकासक्रम में इनको स्थान दिया जा सकता है। किन्तु पराविद्या इन सबसे भिन्न है। पराविद्या की विषयवस्तु के सम्बन्ध में हमें यह कहते ही बनता है, कि यह भी नहीं, ऐसा भी नहीं, इतना ही नहीं, इयत्ता से परे और नकार का ही विस्तार। मुण्डक में पराविद्या के माध्यम से जो ज्ञातव्य है उसके विषय में निम्न शब्दों का प्रयोग किया है–

अदृश्यम्-अग्राह्यम्–अगोत्रम्–अकर्णम् अचक्षुः-श्रोत्रम्–अपाणिपादम् -अव्ययम् (मुण्डक १।१।६)

किन्तु इतना होने पर भी यह आत्मा "ज्ञातव्य" है, अस्तित्वहीन नहीं है–यह है–नित्य है, विभु है, सर्वगत है, सुसूक्ष्म है अर्थात् सूक्ष्मतम एवं उससे ही समस्त दृश्यमान् जगत् की उत्पत्ति हुई है–**तथाअरात् सम्भवतीह विश्वम्** (मुण्डक १।७)

स्मरण रखना चाहिये कि अपराविद्या की विषय-वस्तु भी सत्य है, उपेक्षणीय नहीं है–अध्ययन की दृष्टि से यह परमावश्यक है। अक्षर ब्रह्म से समस्त विश्व की सृष्टि हुई है, अतः इस सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ परब्रह्म के प्रकाश से आलोकित और परब्रह्म के तपस् से अनुप्राणित और परम-प्रयोजनवान् है–उसका एक कण भी अनावश्यक नहीं, किन्तु परमावश्यक है। यह जगत् व्यावहारिक जगत् नहीं है, सपना नहीं है, अस्तित्वहीन नहीं है, प्रपंच नहीं है, माया नहीं है, छल और कपट नहीं है। प्रभु की अभिव्यक्ति का यह चरमोत्कृष्ट प्रतीक है। इसकी उपेक्षा हम नहीं कर सकते; इसके अभ्यन्तर में हमें प्रविष्ट होना ही है।

हमारी १०, ११, १२ या १३ उपनिषदें **पराविद्या के उपाख्यान** हैं–ऋषि दयानन्द १० या ११ उपनिषदें आर्ष मानते हैं–ये उपनिषदें वेदों की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्ध रखती हैं–

ऋग्वेद–ऐतरेय
यजुर्वेद–ईश, बृहदारण्यक
सामवेद–केन, छान्दोग्य

यजुः की तैत्तिरीय शाखा—तैत्तिरीय उपनिषद्

यजुः की काठक शाखा—कठोपनिषद्

अथर्ववेद—मुण्डक, माण्डूक्य, श्वेताश्वतर, प्रश्न

पराविद्या के पाँच अध्याय

सूक्ष्म जगत् अध्यात्मविद्या के अध्ययन का विशेष विषय है। यह जगत् अस्तित्ववान् होने पर भी इन्द्रियातीत है। इस अध्ययन के पाँच अध्याय है—

१. इन्द्रियाँ

२. प्राण

३. मानसतंत्र

४. जीव

५. परमात्मा

कोई भी ज्ञानी, मुमुक्षु, जिज्ञासु या अध्येता इन पाँचों के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता। ये पाँचों अमूर्त्त और निराकार हैं, किसी ने भी इनको देखा नहीं, इन्हें नापा-तौला नहीं, इनका चित्र नहीं खींचा, कभी यह पकड़ में नहीं आये। भौतिक-विज्ञान, रसायन या गणित का कोई भी नियम सूत्र, प्रतीक, समीकरण इन पर लागू नहीं है। ये पाँचों एकतन्त्र में ग्रथित है, और उपनिषदें इसका वर्णन करके ही गोरवान्वित हुई है।

केनोपनिषद् में पराविद्या के पाँच तत्व

केनोपनिषद् केन-शब्द से प्रारम्भ होती है, इसीलिए इसका नाम केन उपनिषद् पड़ा है। इसका प्रथम वाक्य इस प्रकार है—

केनषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथम प्रैतियुक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।

(केन १।१)

इस एक मूल वाक्य में तीन इन्द्रियों का संकेत है—वाक्, चक्षु और श्रोत्र।

फिर "केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः" कहकर एक या दस प्राणों की समस्या हमारे समक्ष रक्खी—प्रश्न यह रक्खा कि प्राणों को प्रथम या आदि-प्रेरणा कौन देता है। प्रारम्भ के शब्दों में ही—

"केनेषितं पतति प्रेषितं मनः"—प्रश्न है कि यह मन किससे प्रेरित होकर अपने इष्ट तक जाता है।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति—किससे प्रेरणा पाकर ये वाणियाँ बोलती हैं।

चक्षुः श्रोत्रं क उ देवा युनक्ति—वह कौन देव है जो आँखों से दिखलाता

है और कानो से सुनवाता है।

केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः—मेरे शरीर की घड़ी में किसने पहली बार कूक भरी कि प्राण चलने लगा। तब से आज तक बराबर यह प्राण चलता जा रहा है। जगने में भी, और सोते में भी।

इन इन्द्रियों को समझो, इस मन को समझो, इन प्राणों को समझो। इन सबको अपने-अपने कामों में जातेने वाले को, इन सबको पृथक्-पृथक् प्रेरणा देने वाले को समझो। और फिर यह भी समझो कि किसके हित में इन्द्रियाँ परम पुरुष से प्रेरणा पा रही हैं, किसके हित में प्राण चल रहे हैं—कौन निकल जाता है, तब प्राण चलना बन्द कर देते हैं। किसके हित में मन दौड़-दौड़ कर काम करता है। परम पुरुष भी किसके हित में सबको अपने-अपने कामों में लगाये हुए है।

सबको समझो—ये सब ज्ञातव्य पाँच ही तो हुए—इन्द्रियाँ, प्राण, मन, जीवात्मा और परम पुरुष। इनका ज्ञान ही पराविद्या के पाँच अध्याय हैं।

इन पाँचों में से कोई भी इन्द्रियों के विषय नहीं हैं

याद रक्खो कि आप किसी भी इन्द्रिय से आँखों को नहीं देख सकते।

आप किसी भी इन्द्रिय से श्रोत्र को नहीं देख सकते—

कानों से कान को भी नहीं सुन सकते।

आप किस इन्द्रिय से घ्राणेन्द्रिय को नहीं देख सकते।

आप किसी इन्द्रिय से रसनेन्द्रिय को नहीं देख सकते।

आप किसी इन्द्रिय से त्वगिन्द्रिय को नहीं देख सकते।

सभी इन्द्रियाँ इन्द्रियातीत हैं—रूप-रस-गन्ध-शब्द और स्पर्श से हीन हैं। ये निराकार और निरवयवी ही हैं। उनका कोई चित्र नहीं। आज तक उनको किसी ने देखा नहीं। शरीर-रचना के किसी ग्रन्थ में उनकी आकृति नहीं दी। तो ये क्या नहीं हैं? क्या उनके अस्तित्व को आप अस्वीकार करेंगे? याद रखिये कि ये इन्द्रियाँ ज्ञान का साधन हैं, संवेदनाओं की प्रतीति कराती है—पर स्वयं अज्ञेय हैं, अपौरुषेय हैं। आपने उन्हें नहीं बनाया है, पर आप के लिए हैं। जिसने उन्हें बनाया है, वह स्वयं इन इन्द्रियों का विषय नहीं, और वह अपने लिए कभी इन्द्रियों का उपयोग नहीं करता।

हे मूर्ख, इन इन्द्रियों से उस परम पुरुष को देखने की धृष्टता मत कर। इन इन्द्रियों का अपने कार्यों में रत रहना ही उस परमपुरुष के अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है—

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि। (केन १।६)

जो आँखों से नहीं दीखता, किन्तु जिसके अनुग्रह से आँख देखने वाले बनते हैं—वही तेरा प्यारा ब्रह्म है, उसे ही ब्रह्म जान।

यच्छोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तमेव ब्रह्म त्वं विद्धि। (केन १।७)

जो कान से नहीं सुना जा सकता, पर जिसके अनुग्रह से कान सुनने की सामर्थ्य रखते हैं—उसे ही तू ब्रह्म जान।

जो अवस्था इन्द्रियों की है, वही प्राणों की भी है। आज तक किसी ने प्राणों को नहीं देखा। प्राण निराकार हैं। किसी शरीर रचना की पुस्तक में इनका चित्र नहीं। प्राणों में न रूप है, न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है और न शब्द। ये इन्द्रियातीत हैं। इन्द्रिय के विषय नहीं। तो क्या ये नहीं हैं? हैं तो अवश्य। कौन मूर्ख इनके अस्तित्व को अस्वीकार करने का साहस करेगा। इनके न रहने पर आप भी शरीर में न रह सकेंगे।

पर हमारा परमपुरुष इन प्राणों से स्वयं कोई भी काम नहीं लेता। उसकी चेतना इन प्राणों से प्रेरित नहीं होती। उसकी प्रबल शक्ति इन प्राणों पर निर्भर नहीं है। वह हमारे प्राणों को प्रेरणा देता हुआ भी प्राणातीत है—

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणोयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि। (केन १।८)

कौन अद्वैतवादी अपने मन के अस्तित्व को अस्वीकार करेगा या कौन नास्तिक अपने मन की सत्ता को माने बिना अपनी नास्तिकता का प्रतिपादन कर सकेगा। यह मन भी इन्द्रियातीत है। निराकार है इसका कोई चित्र नहीं, इसकी तराजू में कोई तौल नहीं, इसकी किसी पैमाने से कोई नाप नहीं। अपनी जगह से कभी हिलता नहीं, किन्तु भूत, वर्तमान, भविष्यत् तीनों कालों में और आकाश के सभी आयामों में दौड़ लगाता सा प्रतीत होता है। इसका अध्ययन **पराविद्या** के अध्ययन का एक विशेष अध्ययन है।

इन्द्रियाँ, प्राण और मन—ये तीनों इन्द्रियातीत हैं। अतीन्द्रिय होने पर भी हम इन तीनों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इन तीन निराकार अमूर्तों का अस्तित्व मान लेने के बाद हमारे पास कोई विकल्प नहीं रहता और पूछना ही पड़ता है—किस **परमपुरुष** से ये तीनों प्रथम प्रेरणा ही नहीं, प्रत्युत सतत् प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं, और किस तुच्छ पुरुष के निमित्त परमपुरुष

इन तीनों को प्रेरित करता रहता है?

अत: पराविद्या के अध्येता के अध्ययन के सम्पूर्ण क्षेत्र को हम पाँच अध्यायों में प्रस्तुत करते हैं–(१) इन्द्रिय विषयक अध्याय, (२) प्राण विषयक अध्याय, (३) मानस–तंत्र विषयक अध्याय (४) जीवन विषयक अध्याय और (५) परमपुरुष या अक्षर ब्रह्म विषयक अध्याय।

इन्द्रिय-गोलक इन्द्रियाँ नहीं हैं

जब मैं किसी से पूछता हूँ कि क्या तुमने अपनी आँख देखी है, तो वह मेरे प्रश्न पर आश्चर्य करता है। यह ठीक है कि कोई भी देखने वाला अपनी आँख से अपनी आँख नहीं देखता किन्तु दर्पण में तो सब ने अपनी आँख का प्रतिबिम्ब देखकर अपनी आँख मानों देख ही ली, ऐसा मान लेते हैं। हममें सब दूसरों के चेहरों पर उनकी आँखें देखते हैं और वे मेरे चेहरे पर मेरी आँख देखते हैं, इससे भी मुझे विश्वास हो जाता है कि मेरे चेहरे पर आँखें हैं। मेरे आँख है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि **मैं देखता हूँ।**

पर क्या सचमुच मैं आपके चेहरे पर आँख देख रहा हूँ, या आप मेरे चेहरे पर आँख देख रहे हैं! जिसको मैं और आप आँख कहते हैं, वह तो आँख के देखने के झरोखे हैं। इसे हम आँख का गोलक कहते हैं। आँख हमारे चेहरे पर नहीं है, यह तो कहीं आपके भीतर बैठी हुई है–कपाल के भीतर। चमकती हुई हिलती–डुलती पुतली भी आँख नहीं है। हमारी आँख (जिसे हम गलती से आँख कहते हैं) एक केमरा मात्र है। कैमरे के मुख पर लेन्स होता है, और वैसी ही आँख की हमारी पुतली है। आँख के गोलक या लेन्स द्वारा हमारे मस्तिष्क पटल पर (रेटिना पर) बाहर की वस्तुओं का एक बिम्ब बनता है। यह बिम्ब भी आँख नहीं है। मस्तिष्क का पटल तो फोटोग्राफी के केमरे का प्लेट या फिल्म है, जिस पर नियमानुसार चित्र बनता है। जिस स्थान पर यह चित्र बिन्दु मात्र बन रहा है, उसके कहीं समीप ही हमारी आँख है। चेहरे पर अलग–अलग आँख के दो गोलक हैं। पर मस्तिष्क पटल पर एक ही बिम्ब पड़ता है, और उस बिम्ब को देखने वाली आँख को आज तक किसी ने नहीं देखा। यह निराकार है, इन्द्रियातीत है। उसके माध्यम से सब कोई देखते हैं, पर उस आँख को किसी ने नहीं देखा।

यही हाल हमारे कानों का है। चेहरे से दायें–बाँयें जो कान ऐसे लटक रहे हैं, ये कान नहीं हैं–कान के लिए दो झरोखे मात्र हैं। ध्वनि की तरंगों

को मस्तिष्क पटल तक ले जाने वाली खिड़की या कान के ये गोलक हैं। इन गोलकों की सहायता से मस्तिष्क के पटल पर कहीं एक बिम्ब ध्वनि की संवेदना का पड़ता है। यहीं पर कहीं पड़ोस में बैठा हुआ आपका कान है जो वस्तुत: श्रवण की इन्द्रिय है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ठीक जिस स्थल पर आप अपने अभ्यन्तर में देखते हैं, ठीक उसी स्थल पर आप कान की इन्द्रिय से (श्रोत्रेन्द्रिय से) सुनते भी हैं।

आपकी पाँचों इन्द्रियों के गोलक चेहरे पर विभिन्न स्थानों पर हैं, पर पाँचों इन्द्रियाँ एक ही बिन्दु पर हैं। आप जहाँ पर देखते हैं, ठीक उसी स्थल पर आप सुनते भी हैं, सूँघते भी हैं, वहीं पर आपको रसना-इन्द्रिय (स्वाद चखने की इन्द्रिय) भी है, वहीं पर सूँघने की अर्थात् घ्राणेन्द्रिय भी है और वही त्वचेन्द्रिय है। पाँचों इन्द्रियाँ कहीं एक बिन्दु पर हैं और समस्त कर्मेन्द्रियों को इसी स्थल से हम अपनी-अपनी प्रेरणायें भी समय-समय पर देने का प्रयत्न करते हैं।

अक्ष और चक्षु-कर्ण और श्रोत्र

जो गोलक आँख है, उसे अक्ष या अक्ष्ण कहते हैं, पर इससे परोक्ष में जो देखने की इन्द्रिय है उसे चक्षु कहते हैं। गोलक दो हैं, किन्तु देखने की इन्द्रियाँ एक है—अत: प्राचीन वाक्य है—

अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु—मेरे दोनों देखने के गोलकों में (आँखों में) चक्षु हो, अर्थात् देखने की सशक्त इन्द्रिय हो।

कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु—मेरे दोनों सुनने के गोलकों में (कर्णों में) श्रोत्र हो, अर्थात् सुनने की सशक्त इन्द्रिय हो।

हमारे चेहरे पर जो सात गोलक हैं उन्हें सप्त ऋषि (सप्तर्षि) कहा गया है। लोगों ने इनके सात नाम भी रख दिये हैं—(1) कान के दो गोलक-गौतम (दाहिना कान), भारद्वाज, (बायाँ); (2) आँख के दो गोलक-विश्वामित्र (दाहिनी आँख), जमदग्नि (बायीं); (3) नाक के दो छिद्र-वसिष्ठ (दाहिना छेद), कश्यप (बायाँ छेद); (4) वाणी या जीभ (मुखेन्द्रिय)-अत्रि।

इमावेव गोतम भरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं
भरद्वाज इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी
अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरिमावेव
वसिष्ठकश्यपावयमेव वसिष्ठोऽयं
कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा ह्यत्रमद्यतेऽत्तिहं

वै नामैतदवत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति
सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद।

(बृहदारण्यक उपनिषद्–२।२।४)

कभी–कभी इन्द्रियों की संख्या ८ बतायी जाती है और तब सप्तर्षि (सप्तमऋषयः) से अभिप्राय ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, छठा मन और सातवीं बुद्धि कहा जाता है।

पर विद्या का दूसरा अध्याय-प्राण

यजुर्वेद का वचन है–

सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति
सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयु–
स्तत्र जागृतोऽअस्वप्नजी सत्रसदो च देवौ।

(यजु० ३४।५५)

हमारे शरीर में सात ऋषि स्थित हैं, सात बिना प्रमाद के हमारी रक्षा करते हैं। सात शरीर में व्याप्त रहने वाले (आपः व्यापनाः) हमें सुषुप्ति लोक को ले जाते हैं। और तब दो देवता ऐसे हैं, जो बराबर जगते रहते हैं, सदा काम करते रहते हैं, यज्ञ भूमि पर बराबर बैठे रहते हैं और यज्ञ का रक्षण करते रहते हैं।

इस वेद मन्त्र में सात प्राणों का नाम सप्तऋषयः है। इनमें से दो (प्राण और अपान) कभी सोते भी नहीं।

प्राण एक है, प्राण तीन हैं, प्राण पाँच हैं, प्राण अनेक हैं–प्राण का मूल स्रोत वहीं कहीं है जहाँ हमारे शरीर पिण्ड में परमात्मा और आत्मा का साहचर्य है, अर्थात् लगभग वहीं, जहाँ ज्ञानेन्द्रियों का फोकस है। कभी–कभी नासिका के दोनों रन्ध्रों से निकलने वाले वायु के सन्निकर्ष में जो घ्राणेन्द्रिय है, वह भी प्राण कहलाती है। (**वाक्, वाक्। प्राणः प्राणः। चक्षुः चक्षुः। श्रोत्रं श्रोत्रम्।** ऐसे पद समूहों में घ्राणेन्द्रिय का नाम प्राण है)।

आप याद रक्खें कि नाक से जो हवा बाहर निकलती और भीतर जाती है, वह प्राण नहीं है। प्राण वह प्रेरक–शक्ति है, जिनके कारण श्वास–प्रतिच्छ्वास चलता है। प्राण=प्र+आन, यह अन् या आन ही प्राण है, अपान है, व्यान है, समान है, उदान है। परमात्मा का एक नाम **जलान्** है (परमात्मा से सृष्टि उत्पन्न होती है अतः ज; इसी में लीन होती है, अतः ल, और उसी में चेतनवत् अनुप्रेरित होती है, अतः **अन्**)। प्रत्येक वर्गीकरण की पद्धति में प्राण–अपान आदि शब्दों की परिभाषा अलग–अलग है।

सर्व खल्विदंब्रह्म। तज्जलानिति शान्त उपासीत–(छान्दोग्य; ३।१४।१) शान्त होकर यह ज, ल और अन् है, ऐसा आराधे–अर्थात् तस्मात् जायते, तस्मिन् लीयते, तस्मिन्नेव स्थितिकाले अनिति।

हमारी समस्त उपनिषदें प्राणविद्या से भरी हैं। प्राणों का नाम असुर भी है (अपि वा असुः इति प्राणनामाः तः शरीरे भवति–निरुक्त ३।८)। यों तो "सत्य" या "सु" (अच्छा) से सम्बन्ध रखने वाले सत्यरत प्राणियों को सुर और इनके उलटे "असु" या असत्य में रत रहने वाले पुरुषों को असुर कहते हैं।

वेद में बहुधा तीन प्राणों का उल्लेख है–प्राण, अपान और व्यान का–

प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा (यजु० २२।२३);
प्राणदा, अपानदा, व्यानदा (यजु० १७।१५)

पर कभी-कभी दो का ही वर्णन आता है–प्राणपा मे अपानपाः (यजु० २.३४) यहाँ इसी वर्गीकरण में एक तो श्वास है जो भीतर खींचा जाता है, इससे हम सूँघते भी है। फूल की गन्ध सूँघते समय हम नाक से साँस भीतर खींचते हैं। यही अपान है। इसके विपरीत प्राण वह है, जो नाक से बाहर फेंका जाता है। प्राणायाम में इन दोनों का ही पूरक, रेचक और कुम्भक से सम्बन्ध है। अपान से हम फेफड़े भरते हैं, और प्राण द्वारा फेफड़ों को खाली करते हैं।

जब हम प्राण को तीन में वर्गीकृत करते हैं तो नाक से बाहर-भीतर छोड़ा गया और ले जाया गया ये दोनों ही प्राण हैं; किन्तु मल-मूत्र आदि समस्त अपद्रव्यों को शरीर से बाहर निकालने वाली प्रेरणादायिनी शक्तियों का नाम अपान है। शरीर की अन्य समस्त क्रियाओं को प्रेरणा देने वाली सर्वत्र व्यापक शक्ति स्रोत का नाम **व्यान** है।

उपनिषदों में बहुधा प्राण पाँच गिनाये गये हैं–प्राण, अपान व्यान, समान और उदान। **समान** प्राण वह है जो शरीर में बने सहस्रों द्रव्यों को यथोचित समय पर यथार्थ यथावश्यक मात्रा में रुधिर के माध्यम से पहुँचाता रहता है, और इसी प्रकार के अनेक कार्यों को करता है। उदान प्राण सोते समय आत्मा को कार्यस्थली से उठाकर विश्रामस्थली में ले जाता है और इसके सम्बन्धों को इन्द्रियों की संवेदनशीलता से शिथिल कर देता है। खतरे और विपदा के समय यह मनुष्य को मूर्च्छना की अवस्था में ले जाता है, और मृत्यु की वेला में यह आपको एक शरीर से निकाल कर दूसरे नये शरीर में कुशलतापूर्वक पहुँचाता है।

सात प्राणों या दस प्राणों के नाम वेद या उपनिषदों में कहीं नहीं दिए।

वेद में सात प्राणों को **सप्त-ऋषयः** कहा है, पर इनके नाम नहीं गिनाये। ३३ देवताओं में ८ वसु हैं, ११ रुद्र, १२ आदित्य, ये ३१ और इनके अतिरिक्त एक इन्द्र (विद्युत्) और एक प्रजापति (यज्ञ) इस प्रकार संख्या ३३ हो जाती है।

८ वसु–कतमे वसव इत्यग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसवः (अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र, कुल ८)।

११ रुद्र–कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते। अर्थात् दश प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा–शरीर में से निकलने पर ये रुलाते हैं, इसलिए रुद्र हैं) यहाँ दस प्राण नहीं गिनाये गये।

१२ आदित्य–कतम आदित्या इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्यैत आदित्याः। (बृहदारण्यक–३।९।३–५)

१. इन्द्र–कतम इन्द्रः–स्तनयिन्नुरेवेन्द्रः (बादलों की बिजली)

१. प्रजापति–कतमः प्रजापतिः–यज्ञः प्रजापतिः

(बृहदारण्यक–३।९।६।)

प्राणों की संख्या हठयोग के साहित्य में शायद पूरी की गयी है। ऊपर दिये पाँच प्राणों में नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय के नाम कल्पित किये गए। हिचकी आने के समय नागपाण काम करता है, पलक मारते समय **कूर्म**, पाचन में काम करने वाला **कृकल** है; जँभाई लेने में **देवदत्त** प्राण का योग है, और शरीर के पोषण में **धनञ्जय** का उपयोग होता है।

अन्नमय कोश को मनोमय कोश से सम्बद्ध करने वाला हमारा प्राणमय कोश है। असुर सभी इन्द्रियों को वासनाओं से विकृत कर सके, किन्तु प्राणों में वे विकार पैदा न कर पाये, इसलिए प्राणों की सर्वत्र श्रेष्ठता बतायी गयी है। जीवनचर्या में प्राण ही सम्राट् है

(प्राणेव सम्राट्–बृहदारण्यक, ४।१३)।

प्राण हमारे बनाये नहीं हैं। जब हम गर्भ में थे, तो माता का प्राण ही हमारा प्राण था, माता का भोजन ही हमारा भोजन था, माता का रुधिर ही हमारा रुधिर था। माता के आश्रय में हम घोर निद्रा में सो रहे थे, जो सुषुप्ति से भिन्न हमारी चौथी या पाँचवीं अवस्था थी–जागरित अवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति अवस्था, तुरीय या चोथी समाधिस्थ की अवस्था, और इन चारों से भिन्न पराश्रयी अवस्था।

माता के शरीर से बाहर आते ही किसी अज्ञात किन्तु स्नेहवत्सला सत्ता ने हमारे शरीर में घड़ी की सी कूक दी। घड़ी चल पड़ी, यह कूक ही प्राण है। जब तक घड़ी में कूक है तब तक जीवन है। एक बार घड़ी की कूक रोक दी गयी, तो फिर नहीं चलने की।

आप सबको सदा याद रखना चाहिए कि योगी भी प्राण की उपेक्षा नहीं कर सकता। समाधिस्थ योगी मृत प्राणी नहीं है। समाधि में भी प्राण चलते रहते हैं, जैसे मूर्च्छना में या सुषुप्ति में। जो लोग समझते हैं, कि योगी श्वास नहीं लेते, या वे अपने हृदय की गति घंटों और महीनों रोके रख सकते हैं, यह अज्ञानता है। प्राणों की और हृदय की गतियाँ मरने पर ही बन्द होती हैं, और मृत्यु के बाद वापस नहीं आती।

आत्मा के निकल जाने के साथ ही साथ प्राण भी निकल जाते हैं, और एक बार निकल जाने के बाद कोई भी आत्मा अपने (या किसी दूसरे के) मृत शव में प्रवेश नहीं पा सकता। उसे फिर से कहीं पर गर्भवान् होना पड़ेगा।

यह भी स्मरण रक्खें कि प्राण हमारे लिए परमपुरुष ने शरीर के अन्दर बनाये और सजाये हैं। वही परमपुरुष इन्द्रियों की इन्द्रिय और प्राणों का प्राण भी है। केनोपनिषद् के दूसरे ही वाक्य में सुन्दर से ये शब्द हैं–

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं
स उ प्राणस्य प्राणः। चक्षुषः चक्षुः (केन १।२)

वही कानों का कान, मन का मन, वाणी की वाणी, प्राणों का प्राण और चक्षु की चक्षु है।

यही प्राण हमारी पराविद्या के अध्ययन का दूसरा अध्याय है।

पराविद्या के अध्ययन का तीसरा अध्याय–मानस चेतनायें

बृहदारण्यक उपनिषद् में एक उल्लेख आता है कि जरत्कारु के पुत्र आर्त्तभाग ने याज्ञवल्क्य महर्षि से पूछा कि कितने ग्रह हैं, और कितने अतिग्रह हैं। उत्तर यह मिला कि आठ ग्रह हैं और आठ अतिग्रह हैं (बृहदारण्यक ३।२।१–९)। इनको मैं यहाँ संकलित करके देना चाहता हूँ। आप याद रक्खें कि उपनिषद् की पारिभाषिक भाषा में इन्द्रिय का नाम ग्रह है, पकड़ने वाला है। इन्द्रिय का विषय अतिग्रह है।

ग्रह=इन्द्रिय	**अतिग्रह=इन्द्रिय का विषय एवं धर्म**
१. अपान–प्राण	नाक से साँस भीतर खींचकर गन्ध सूँघना
२. वाक्	वाणी से नाम या शब्द बोलना

३. जिह्वा	जीभ या रसनेन्द्रिय से रस या स्वाद चखना
४. चक्षु	दोनों आँखों से रूप रंग देखना श्वेश ज्यादा है
५. श्रोत्र	दोनों कानों से ध्वनि या शब्द सुनना
६. मन	मन से विभिन्न कामनाओं का करना
७. हस्त	दोनों हाथों से कर्म करना
८. त्वचा	त्वचा (स्पर्शेन्द्रिय) से स्पर्श करना या छूकर विभिन्न संवेदनायें (गरम-ठण्डा, कोमल-कोठर आदि) ग्रहण करना

महर्षि याज्ञवल्क्य के इस वर्गीकरण में पाँच ज्ञानेन्द्रियों, दो कर्मेन्द्रियों (वाणी और हाथ) और एक मन इन आठ का उल्लेख है। मानस तन्त्र का अपना विचित्र स्थान है। एक ओर यह प्राणों के माध्यम से इन्द्रियों से और बाह्य जगत् से हमारा परिचय कराता है, और दूसरी ओर यह अन्तः जगत् में भी हमें ले जाने का प्रयास करता है।

बहिर्जगत् – प्राण – मानस तंत्र < विज्ञानमय कोश
(अन्नमय कोश) < आनन्दमय कोश
(अन्तःजगत्)

इस समस्त विस्तार का सूक्ष्म अध्ययन पराविद्या का विषय है। मानस तन्त्र में अन्तः इन्द्रियों का भी समावेश है, किन्तु इन इन्द्रियों के विषय रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और शब्द नहीं है। आप किस इन्द्रिय से पेट के दर्द की प्रतीति करते हैं? शिर की भयंकर पीड़ा, पेट की भूख प्यास, रास्ते की थकावट आदि संवेदनायें बहिरंग इन्द्रियों के माध्यम से प्रतीत नहीं होती।

वस्तुतः मन एक है, पर इसकी वृत्तियाँ अनेक हैं। विभिन्न चेष्टाओं की दृष्टि से इनके विभिन्न नाम पड़ गये हैं। आपने अन्तःकरण चतुष्टय शब्द सुना होगा जिसके अन्तर्गत मन-चित्त-बुद्धि-अहंकार ये चार अवयव माने जाते हैं। योग दर्शन के आचार्य महर्षि पतञ्जलि ने मन की (या चित्त की) पाँच वृत्तियाँ बतायी है—प्रमाण, विपर्ययं, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इनमें से प्रत्येक की क्लिष्ट-अक्लिष्ट दो-दो वृत्तियाँ और हैं—क्लेश देने वाली और आनन्ददायिनी। एक प्रकार से समस्त पातञ्जल योग चित्त को अनुकूल करने की कला का सूक्ष्म शास्त्र है। मन गिराता है, मन ऊपर उठाता है। मन हमारा होकर भी हमें नचाता है। हमारा प्राइवेट सेक्रेटरी है, किन्तु हमारे ऊपर शासन करने लगता है।

कठोपनिषद् में आत्मा, मन, और इन्द्रियों का सुन्दर सम्बन्ध बताया गया

है। हमारा जीवित शरीर एक रथ के समान है, आत्मा इस रथ पर सवार है। बुद्धि इस रथ का सारथि है, मन इसकी लगाम है, इन्द्रियाँ इस रथ में जुते घोड़े हैं। इन्द्रियों के जो विषय हैं, ये घोड़ों के चलने के मार्ग हैं। इन्द्रिय मन युक्त आत्मा ही भोक्ता कहलाती है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयान् आहुविषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनीयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

(कठ, ३।३-४)

हम में से कोई नहीं जानता कि मन किस वस्तु का बना है, इसका रूप रंग तो है नहीं। यह भी इन्द्रियों और प्राणों के समान निराकार सत्ता है जिसके अस्तित्व को अस्वीकार करना अपने साथ छल करना है। सांख्य के आचार्य कपिल महर्षि ने अपनी कल्पना के आधार पर शरीर के विकास की एक परियोजना रक्खी है। सम्भवतया इससे समीचीन विकासवादी परियोजना या परिकल्पना और कोई हो भी न–

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था-प्रकृतिः।
प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्
पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्।
तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि–
पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥ सांख्य १।६१

सत्व-रजःतमः–इन तीन की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। हमारा जब शरीर बनता है (मा के गर्भ में) तो इस साम्यावस्था वाली कारण रूप प्रकृति से ही महान् (महत्-तत्व) बनता है। (Cosmic intelligence) या परम बुद्धि तत्त्व का छोटा सा अंश), और फिर इससे ही अहंकार, और पुनः आगे के क्रम में पाँच तन्मात्रायें (रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द) और दोनों प्रकार की इन्द्रियायें (ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय) बनती हैं–स्थूल भूत तो पंच तन्मात्राओं के बाद बनते हैं। यह सब विकास क्रम पिता-माता के गर्भ में जीवात्मा के प्रवेश के बाद आरम्भ होता है। समस्त विकास-आयोजना के २५ अवयव हुए जिन्हें कपिल ने **पंचविंशति-गण** बताया है।

१. प्रकृति, २. महान् ३. अहंकार, ४-५ पंचतन्मात्रा (रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द), ९-१९ पाँच ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ११वाँ मन, २०-२४

पंचस्थूल भूत (पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-आकाश), २५ पुरुष या जीवात्मा।

कुछ आचार्य मन (११वीं इन्द्रिय) को महान् या महत्-तत्व के अन्तर्गत ही मानते हैं, और वे पुरुष के अन्तर्गत जीवात्मा और पर-परमात्मा दोनों की गिनती करके गणों की संख्या पच्चीस पूरी कर लेते हैं।

हम यहाँ किसी परिकल्पना की व्याख्या या आलोचना नहीं करना चाहते। कपिल के २५ गण भी पराविद्या के अध्ययन का विषय है। बिना इस ज्ञान के मुक्ति नहीं हो सकती-**ज्ञानान् मुक्तिः** (३।२३)। यह सांख्य तत्वज्ञान का मुख्य सूत्र है।

हम नहीं जानते कि मन क्या है, इसकी रचना किस द्रव्य को लेकर की गयी, किन्तु मन के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते। स्वीकार करना-न-करना-यह भी मन का व्यापार है। मन का उल्लंघन करके हम कुछ कर या सोच भी नहीं सकते। मन के आगे क्या है, मन की उपेक्षा करके जान भी नहीं सकते।

मन की एक परम विशेषता है। काल के पटल पर बना हुआ यह इतना छोटा सा छेद है, कि यह एक ही समय एक से अधिक संवेदना भेजने ही नहीं देता। केमरा यन्त्र की यह खिड़की है। जिस समय आप रूप देखते हैं, उस समय आपको रस संवेदना नहीं आती। जब देखते हो, तो सूँघते नहीं, जब सूँघते हो, तब चखते नहीं, जब लाल देखते हो, तो पीला नहीं देखते, जब नमकीन स्वाद लेते हो, तो उसी क्षण मीठा स्वाद नहीं। इसी बात को गौतम महर्षि ने अपने न्यायदर्शन के सूत्र में कहा है-

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् (न्याय १।१।१६)

दो विषयों का ज्ञान एक ही साथ एक ही समय में न होने देना, यह मन की सबसे बड़ी विशेषता है। आज की भाषा में इसे हम इस प्रकार कहते हैं कि Mind is a time-pinhole Camera, मन तस्वीर खींचने का वह केमरा है, जिसमें **काल के पटल** पर छोटा सा छिद्र संवेदनाओं को भीतर ले जाने के लिए बना है। मन के छेद में से हाथी और पहाड़ तो भीतर जा सकते हैं, पर एक साथ कोई भी दो संवेदनायें नहीं प्रवेश पातीं।

कहा जाता है कि मन बड़ा गतिवान् है बड़ी तेजी से दौड़ता है-भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में इसका प्रवेश है, आना-जाना है। पर यह भी न भूलिए कि आपके मन ने शरीर में अपना स्थान कभी नहीं छोड़ा। वह शरीर के बाहर निकलता ही नहीं। आपका मन आपके शरीर में

ही सदा रहता है–दूसरे के शरीर में जा नहीं सकता। आप अपने मन को दूसरे के मन से बदल नहीं सकते।

अपने कार्यक्षेत्र में मन की गति इतनी तेज है कि लगभग एक सेंकड में १०२२ बार इसकी खिड़की खुलती-बन्द होती है (१० के आगे २१ बिन्दु लगायें–(१००००००००००००००००००००००) इतनी शीघ्रता से यह काम करता है, मन की चञ्चलता की शिकायत मत कीजिये। अगर इतना चंचल या गतिमान न होता तो आप किसी को एक नजर में सिर से एड़ी तक देख भी न पाते।

मन के सम्बन्ध के यजुर्वेद में ६ सुन्दर मंत्र है–**तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु** वाले–जिन्हें आप शान्किरण सम्बन्धी मन्त्रों के साथ पढ़ते है (यजु० ३४।१-६)। आप इन्हें अर्थ सहित समझने का प्रयत्न करें। मन की विलक्षणताओं का इससे अच्छा उल्लेख कम ही मिलेगा।

यज्जाग्रतो दूरमदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु (१)

यह मन जागते और सोते में (सपने के समय) बड़ी तेज गति से दूर-दूर भागता है–अभी लण्डन, अभी दिल्ली, अभी कलकत्ता, अभी दफ्तर में, अभी चौके में। यह ज्योतियों या प्रकाशों का भी प्रकाश है। दौड़ते समय इसे कोई टॉर्च नहीं दिखाता, अंधेरा हो या उजियाला, यह स्वयं अपने मार्ग का ज्योति-स्तंम्भ है। यह मन मेरे शिवसंकल्पों वाला बने। आप अन्य पाँच मन्त्रों को भी अर्थ सहित समझ लीजिए।

मैं मन के प्रकरण को यहीं छोड़ना चाहता हूँ। उपनिषदों में आप मन का विस्तार देखें, और ईश्वर की सृष्टि की सराहना करें। ईश्वर ने यह मन अपने लिए नहीं, आपके लिए बनाया है। हर एक को अलग-अलग एक-एक मन दिया है। यह हमारे और आपके अद्‌भुत काम की चीज है–बन्धन में भी डालेगा और मुक्ति भी दिलावेगा। मन के भीतर विकार आते ही आप पागल कहलावेंगे, बुद्धू, आलसी, और न जाने क्या-क्या!!

पराविद्या के स्वाध्याय का चौथा अध्याय-जीवात्मा

यह स्मरण रखना चाहिए कि इन्द्रियाँ, प्राण और मानसतंत्र अध्ययन के विषय भी हैं और अध्ययन के साधन भी। इन साधनों में मानसतंत्र सबसे प्रमुख है। इस मानसतन्त्र के चित्त की एक वृत्ति यह भी है कि इन्द्रियों को विषयों की ओर लगाना और इन संवेदनाओं को मन की खिड़की से भीतर के लोक में आत्मा तक पहुँचाना। इसकी अन्य एक प्रवृत्ति तरह-तरह की

कल्पना करना भी है, हिसाब लगाना भी है, भूत और भविष्यत् के जगत् में दौड़ना भी है। और जाने हुए ज्ञान को स्मृति-पटल पर सुरक्षित रखना भी है। अगर ये वृत्तियाँ न हों तो कोई ज्ञान सम्भव नहीं है। और यह ज्ञान होता है किसको? **मन को नहीं** मन **ज्ञाता** नहीं है—जानने की एक इन्द्रिय मात्र है—अत्यन्त सूक्ष्म इन्द्रिय जो अन्य इन्द्रियों द्वारा भेजी गयी संवेदनाओं का समन्वय करती है, उनका एकीकरण करती है, और अन्त में **ज्ञातव्य** वस्तु से हमारा सम्बन्ध जोड़ती है। अतः मन और उसका समस्त तन्त्र हमारे अध्ययन का साधन है। और इसी साधन से हम मन को भी समझने का प्रयास करते हैं। मन से ही मन को जानना ऊटपटाँग सी बात लगती है। जो ज्ञान का साधन है, वह ज्ञान का विषय या **ज्ञातव्य** कैसे बन सकता है? इस प्रश्न का कोई उत्तर हमारे पास नहीं बिना—मन की सहायता के हम कोई उत्तर भी नहीं दे सकते। यह स्यात् या शायद इसीलिए है कि मन साधन मात्र है किन्तु मन ज्ञाता नहीं है। जानने वाला कोई और है। मन से भिन्न है। मैं कलम से लिख रहा हूँ, किन्तु कलम भी लेखक नहीं है, मेरे हाथ की अँगुलियाँ भी लेखक नहीं। अँगुलियों में चेतना देने वाला प्राण भी लेखक नहीं है। और आगे सोचें, तो जिस मन के बिना हम लिख भी नहीं सकते, वह भी लेखक नहीं है। इसके पीछे भी एक सत्ता है, जो लेखक है, जो इस बात में स्वतन्त्र है कि क्या लिखे, क्या न लिखे, कब लिखे, कब लिखना बन्द कर दे, और अपने लिखे का **उत्तरदायी** हो। अगर मैंने किसी की बुराई लिखी है, तो कलम को दण्ड नहीं मिलेगा—अँगुलियों को भी सजा नहीं दी जायगी। कोई और ही सत्ता है जिसे दण्ड मिलेगा। इसी का नाम हमने अपने साहित्य में **जीवात्मा** रक्खा है। इसको कभी-कभी **आत्मा** भी कहते हैं। इसी के लिए साहित्य में **स्व** (अपनी, मेरा, अस्मद्) शब्द का प्रयोग होता है। स्वराज्य, स्वदेश, स्वाधीनता, स्वीकार आदि।

यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारे साहित्य में **आत्मा** शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। आत्मा कभी तो परमात्मा या परमेश्वर के अर्थ-भी हम लेते हैं, और कभी **जीवात्मा** के अर्थ में। **पुरुष** भी इसी प्रकार का एक शब्द है—परमेश्वर भी पुरुष है, और शरीर के बन्धन में आया हुआ जीव भी पुरुष है। परमात्मा समस्त ब्रह्माण्ड के भीतर और उससे बाहर भी है (**तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः—ईश,** ५)।

ब्रह्माण्ड ही उसका शरीर है—जो शरीर में रहे उसे पुरुष कहते हैं, अतः परमेश्वर भी पुरुष है। हम और आप भी अलग-अलग पुरुष हैं, क्योंकि

आप अपने शरीर में रहते हैं, और मैं अपने शरीर में रहता हूँ। पशु, कीट, पतंग से लेकर घोड़े, हाथी, गैंडे, शेर ये सभी पुरुष हैं। परमात्मा के नाम का पुरुष तो एक ही है, पर जीवात्मा तो असंख्य हैं, जिन्हें परमात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। अतः जीवात्मा से सम्बन्ध रखने वाले असंख्य पुरुष हैं।

उपनिषद् के निम्न वाक्यों में आत्मा शब्द का प्रयोग शरीर के बन्धन में आये हुए **जीवात्मा** से है, न कि परमात्मा से–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। (कठ. ३।३)

शरीर हमारा रथ है, और इसमें बैठा हुआ आत्मा रथी (रथ पर जो बैठे या सवार हो, उसे **रथी** कहते है)

आत्मा शब्द का कभी-कभी अन्तरात्मा या **अन्तःकरण** के लिए भी प्रयोग होता है जैसे–

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषों व्यापकोऽलिङ्ग एव च।

(कठ ६।७-९)

इन्द्रियों से मन प्रबल है। मन से सत्त्व या बुद्धि उत्तम है। बुद्धि से अन्तःकरण (महान् आत्मा) ऊपर है, महान् आत्मा से सत्त्व उत्तम है। उससे उत्तम अव्यक्त (प्रकृति) है। और अव्यक्त से भी आगे महत्त्व वाला पुरुष है।

ईश उपनिषद् के निम्न वाक्य में आत्मा शब्द परमात्मा के लिए आया है–

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ (ईश, ६)

बृहदारण्यक उपनिषद् में **अन्तर्यामी** आत्मा सम्बन्धी कतिपय वाक्य है जिनमें आत्मा शब्द ब्रह्म या परमात्मा के लिए ही है।

त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः (बृहदा० ३।७,२३)

अन्यत्र इसी उपनिषद् में ये वाक्य हैं–

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रियं भवति,
आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।
आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
निदिध्यासितव्यः (बृहदा०२।४।५)

इस ऊपर के वाक्य में आत्मा शब्द जीवात्मा और परमात्मा दोनों के लिए ही लागू होता है।

जीवात्मा—जीवात्मा स्वयं में एक सत्य सत्ता है। यह निराकार है—न इसका रंग है, न इसका रूप है, न इसकी तौल है। यह इतना छोटा है, कि इससे छोटा और कोई नहीं—अत्यन्त छोटा होने के कारण इसे **अणु** भी कहते हैं। बहुत सूक्ष्म होने के कारण इसे आप कहीं बन्द नहीं कर सकते। काठ क्या, लोहे-सीसे की चद्दरों से बने दरवाजों से बाहर निकल भागने में इसे कोई कठिनाई नहीं होती। इसे आप कमरे में कैद नहीं कर सकते, बक्सों में बन्द नहीं कर सकते।

जीवात्मा की गति इतनी तेज है कि रोशनी या प्रकाश की किरणों की गति इसकी गति या वेग के सामने कुछ भी नहीं है। एक शरीर से निकलने पर अरबों मील दूरी के लोक-लोकान्तरों में पहुँचने में सेकेंड मात्र भी समय नहीं लगता। किन्तु प्रभु की व्यवस्था ने इसे भिन्न-भिन्न योनियों के शरीर में बांध रक्खा है। कैसे बाँधा है, हम नहीं जानते-किसी रस्सी या डोरी से बाँधा है—कौन कह सकता है? इतना हम जानते हैं कि हमें प्रभु ने हमारे शरीर में बाँध रक्खा है। जिस दिन से मैं पिता-माता के गर्भ में बिन्दु मात्र के वीर्यकण या डिम्ब में आया, तब से मृत्यु तक मैं अपनी इच्छा से इस बन्धन को तुड़ा कर कहीं नहीं जा सकता। अपने शरीर में ही रहूँगा। मैं किसी भी समय आपके शरीर में भी नहीं घुस सकता। हर एक जीवात्मा को अकेले उसके लिए अलग-अलग शरीर मिलता है। प्रभु की व्यवस्था के अनुसार उसके आदेश से ही मैं इस शरीर से बाहर निकलूँगा। जिस दिन निकलूँगा, उसे हम लोग मृत्यु का समय कहते हैं। वह काल, दिवस और संवत्सर मेरा मृत्यु-दिवस कहा जाता है। जिस दिन पिता के गर्भ में होता हुआ (पिता के वीर्यकण के माध्यम से) माता के गर्भ में आया था, वह मेरा जन्म काल था—उस समय की तारीख, तिथि या दिवस मेरा असली **जन्म दिवस** था। उस जन्म दिवस से आज तक का मेरा जीवन मेरी आयु कहलाती है।

वैसे तो मेरी सत्ता या अस्तित्व की कोई आयु नहीं है; मैं न कभी जन्मा, न मरा। मैं सदा रहने वाली **नित्य--सत्ता** हूँ।

मुझे परमात्मा ने बनाया नहीं है। किसी ने भी मुझे नहीं बनाया। परमात्मा मुझे एक शरीर से निकालकर दूसरे शरीर में ले जा सकता है, किन्तु मुझे मार नहीं सकता। मैं भी अविनाशी हूँ। सूर्य की उत्तम भट्ठी भी मुझे जला नहीं सकती। जब मैं शरीर में नहीं होता, तो मुझे न कुछ ठंडा लगता है, न गरम, न कोई काला दिखता है न पीला। न कुछ मीठा लगता

है, न कड़वा या नमकीन। शरीर से बाहर निकलने पर न मैं किसी की आवाज सुनता हूँ, न किसी का गाना। न मुझे गुलाब का इत्र सुगन्धित लगता है, और न जलती मिर्च की गन्ध कष्ट दायक। शरीर से निकलने पर मैं स्वयं जानता भी नहीं कि कहाँ किसके गर्भ में जाकर मुझे जन्म लेना है।

जन्म लेने के अनन्तर, मनुष्य के शरीर में मेरी कई अवस्थायें रहती हैं—जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ति अवस्था, और समाधि अवस्था। जागृत अवस्था में ही मैं सारे कार्य करता हूँ, और जितने कार्य **स्वतन्त्रतापूर्वक** करता हूँ, उनका मैं उत्तरदायी हूँ। शरीर से सदा काम नहीं ले सकता, जब शरीर में थकावट आ जाती है, शरीर में स्वतः एक आलस्य आ जाता है, आँखों की पलकें झपकी लेने लगती हैं। मैं बैठा और खड़ा भी नहीं रह सकता—लेट जाता हूँ, और सोने लगता हूँ। जिस दिन अधिक श्रम किया हो, उस दिन फौरन गहरी नींद आ जाती है, और मैं खर्राटे लेने लगता हूँ। धीरे-धीरे मैं निद्रादेवी की गोद में चला जाता हूँ। गहरी सुख की नींद का नाम ही **सुषुप्ति** अवस्था है। माण्डूक्य उपनिषद् में लिखा है कि—

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते
न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्॥५॥

सोने की जिस स्थिति में मन न तो कोई कामना करता है, न कोई स्वप्न देखता है उस बेखबर नींद का नाम सुषुप्ति है।

कभी-कभी बिना थकावट के मैं लेटा या मन में कोई चिन्ता लेकर लेटा, तो तुझे एकदम नींद नहीं आती। आँखें मुदी रहती हैं, लोग समझते हैं कि मैं सो रहा हूँ—शायद खर्राटे भी ले रहा हूँगा, पर मैं ही जानता हूँ कि मुझे नींद नहीं आ रही। इस प्रकार की नींद का नाम **तन्द्रा** या **अर्धनिद्रा** (Insomnia) है। अमीर लोगों को गुलगुले गद्दों पर भी नींद नहीं आती। सोने से पहले वे बेचैन रहते हैं, दवाई की गोलियाँ लेकर सोने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत, दिन भर मेहनत से थका मजदूर या किसान धरती पर कंकड़ों पर लेटा नहीं, कि मौज की नींद सोने लगता है।

स्मरण रखना कि मनुष्य जब गहरी नींद सोता है, तो इन्द्रियों से जीवात्मा के सम्बन्ध टूट जाते हैं—न वह सूँघता है, न चखता है, न सुनता है, न छूता है और न देखता है, किन्तु उसके श्वास या प्राण चलते रहते हैं, खून का प्रवाह नहीं रूकता। गाड़ी भी चलती रहती है। दिल की धड़कन बनी रहती है। ये चारों ही इस बात का प्रमाण है कि जीवात्मा शरीर में है, शरीर मरा नहीं है। जब तक मैं शरीर में ईश्वर की कृपा से हूँ,

परमात्मा प्राणों को चलाता रहेगा, खून नसों में दौड़ता रहेगा, हृदय की धड़कनें होती रहेंगी, और नाड़ी चलती रहेगी।

गहरी नींद सोने के बाद, जब मनुष्य जगने को होता है, तो सपना आने लगता है। इन्द्रियों से जो सम्बन्ध टूट गया था, धीरे-धीरे स्थापित होने लगता है, और इसी अवस्था में मनुष्य तरह-तरह के सपने देखने लगता है। दो चार मिनट के सपनों में ही न जाने कब-कब की उसे यादें आने लगती हैं, उसकी दबी हुई या सुप्त वासनाओं भी जग जाती है—न खाता हुआ भी वह खाता है, न चलता हुआ भी वह चलता है, अपने को स्वयं मरा या जीवित देखता है। ये सपने हमें जगाने के लिये आते हैं। जैसे ही आप जगे या होश में आये, सपने समाप्त हो जाते हैं, पर उनकी थोड़ी सी याद बनी भी रहती है। आप मित्रों को बताते हैं, कि आज मैंने सपने में ऐसा ऐसा देखा।

समाधि अवस्था का सम्बन्ध योगियों या ध्यानावस्थित लोगों से है, जो जगते हुए भी प्रभु के प्यार में मस्त हो जाते हैं, अपने शरीर की सुध-बुध खो बैठते हैं। यह समाधि अवस्था करोड़ों में से कभी किसी एक को सिद्ध होती है। इस अनिर्वचनीय अवस्था के सम्बन्ध में माण्डूक्य उपनिषद् में निम्न वाक्य है—

नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं
न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।
अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणम
चिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं
प्रपञ्चोपशमं शान्तं
शिवमद्वैतं तं चतुर्थं मन्यन्ते
स आत्मा न विज्ञेयः।।(७)

जीवात्मा की इस तुरीय या समाधिस्थ अवस्था में विचित्र अवस्था होती है, न यह भीतर से चेतनावान् होती है, न बाहर से, न भीतर-बाहर दोनों से, और न बिना चेतना के होता है। वह उस ब्रह्म के सामीप्य में तल्लीन रहता है जो अदृष्ट है, जो व्यवहार में नहीं आता, जो ग्रहण नहीं किया जा सकता, जो लक्षणों से रहित है, जो चिन्तन का विषय नहीं है (अचिन्त्य है), जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है, और जो एकात्म प्रतीति-मात्र सार है। (केवल है, ऐसा ही कहा जा सकता है इससे अधि क कुछ और नहीं)। वह आत्मा प्रपंचों से रहित है, शान्त, शिव और अद्वैत

है। यह आत्मा ही जानने, मानने और समझने योग्य है।

जीवात्मा की पाँचवीं अवस्था **गर्भोपजीवी है, पराश्रयी** है। यह उस अवस्था का नाम है जब वह माता के गर्भ में ९-१० महीने रहता है। सुख की नींद सोता रहता है। माता का भोजन उसका भोजन है, माता का श्वास उसका श्वास है। माता का रुधिर उसका रुधिर है। उसे न कोई कष्ट है, न उसे कोई ज्ञान है, न पिछले जन्म की स्मृति है, और न अगले जन्म की कल्पना। वह जीवित मात्र है किन्तु गहरी मूर्च्छना में है। इस पाँचवीं अवस्था का विवरण किसी ग्रन्थकार ने नहीं दिया।

समस्त माण्डूक्य उपनिषद् पराविद्या का चौथा अध्याय है।

पराविद्या के अध्ययन का पाँचवा अध्याय-परमात्मा या ब्रह्म

समस्त उपनिषदें पराविद्या के इस पाँचवे अध्याय को लक्ष्य करके ही लिखी गयी हैं। वेद में परमात्मा, परब्रह्म या परमेश्वर के अनेक नामों से व्यक्त किया गया है। परमात्मा का अपना निजी नाम ओ३म् है, अ, उ और म् इन तीन अक्षरों से व्यक्त। अकार, उकार, मकार ये तीन अक्षर वर्णमाला के आद्यन्त के द्योतक हैं। भाषा बोलने के लिए प्यारे प्रभु ने हमें एक वाक्-तत्र दिया है—कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ से बना हुआ, जिह्वा या जीभ और श्वास की सहायता से इन पाँचों स्थानों का सम्बन्ध करके हम विभिन्न अक्षरों का उच्चारण करते हैं।

कण्ठ से—अ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग (:)

तालु से—इ, च, छ, ज, झ, ञ, य, श

मूर्धा से—ऋ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र ष

दन्त से—लृ, त, थ, द, ध, न, ल, स

ओष्ठ—उ, प, फ, ब, भ, म

इस ध्वन्यात्मक वर्णमाला का सबसे पहला अक्षर अ है (समस्त स्वरों और व्यञ्जनों की सूची में); सबसे अन्तिम स्वर उ है (जो ओष्ठ की सहायता से बोला जाता है), और समस्त सूची में सबसे अन्त का अक्षर म है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अ, उ, म के भीतर समस्त वर्णमाला समाविष्ट है। इन्हीं तीन अक्षरों को मिला कर हमारे प्रभु का निजी नाम ओम् (अकार+उकार|+मकार) रचा गया है।

उपनिषदों में पराविद्या के अन्तिम अध्याय का प्रारम्भ **ओम्** की व्याख्या से आरम्भ होता है। इसे ही **प्रणव** और **उद्गीथ** कहते हैं—

१. ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर। (ईश, १७)

२. ओं खं ब्रह्म (यजु० ४०)

३. ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ओमिति ह्यु द्गायति, तस्योपव्याख्यानम् (छान्दोग्य, १।१।१)

४. प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।

(मुण्डक, २।२।४)

पराविद्या का विशेष विस्तार उपनिषदों में हुआ। वेद में परमेश्वर के मुख्य साम अग्नि, प्रजापति, इन्द्र, वायु, वरुण आदि गुण-कर्म-स्वभावानुसार थे, किन्तु **ब्राह्मण** काल में संसार की प्रजाओं के पालक परमेश्वर का नाम **प्रजापति** भी बड़ा लोकप्रिय हुआ। उपनिषदों ने परमात्मा के नाम **ब्रह्म** का अधिक प्रचार किया। इन्द्रादि कुछ नाम जीवात्मा के लिए भी प्रयुक्त होते थे, किन्तु परमात्मा के लिए ब्रह्म नाम रुढ़ि हो गया। केन उपनिषद् में ब्रह्म का एक पर्याय तद्वन भी दिया है, ब्रह्म सब से प्यारा है, कमनीय है, पूजनीय और आराधनीय है, अतः इसे "तद्-वन" कहते हैं। तद्वन के समान ही ब्रह्म का एक नाम **तत्सत्** है-

'तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यम्' (केन, ४।६)

निश्चय ही ब्रह्म का प्यारा नाम तद्वन है। तद्वन की ही उपासना करनी चाहिए, हम पीछे कह चुके हैं कि ब्रह्म का एक नाम **तज्जलान** भी है।

ओंकार ही परब्रह्म और अपर-ब्रह्म है-

परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः (प्रश्न,५।२)

यह परब्रह्म और अपर ब्रह्म क्या है, इसके झगड़े में मैं आपको नहीं डालना चाहता। ब्रह्म वस्तुतः न अपर है, न ब्रह्म है, किन्तु जब हम ब्रह्म को विभिन्न नामों से, गुण-कर्म-स्वभावों से जानना चाहते हैं, तो वह हमारे लिये अपर ब्रह्म है। हम अपनी तुलना में कहते हैं-तू दयालु है, सब जगत् का बनाने वाला है, हमें धन सम्पत्ति देने वाला है-आयु, पशु, प्रजा, धन, अन्न का देने वाला है, तो वह अपर ब्रह्म है। किन्तु मोक्ष या मुक्ति अवस्था अथवा समाधि अवस्था में हम उससे कुछ नहीं माँगते, स्तुति और प्रार्थना कुछ भी नहीं करते-केवल उसके प्यार में मग्न रहते हैं, ऐसी अवस्था में हमारा वही अपर ब्रह्म **परब्रह्म** बन जाता है-उस अवस्था के लिए ही मुण्डक उपनिषद् में कहा गया है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ (मुण्डक,२।२।८)

हृदय की ग्रन्थियाँ (गाँठे) खुल जाती हैं, सभी संशय, सभी भ्रान्तियाँ, सभी प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। मनुष्य के कर्मों के शुभाशुभ फलों का प्रश्न भी नहीं उठता–उनका पूर्ण रूप से मूलतः क्षय हो जाता है। यह अवस्था तब आती है, जब हमने पर–ब्रह्म और अवर–ब्रह्म दोनों को ऐसा जान लिया कि हम पूरे रूप से उसके ही बन गए।

इसी मुण्डकोपनिषद् में इससे पहले की श्रुति में निम्न विवरण है–

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषं व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः।
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं संनिधाय।
तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥
(मुण्डक २।२।७)

वह पर–अवर ब्रह्म सर्वज्ञ है, सर्वविद् (सबको जानने–पहचानने वाला है), उसकी महिमा भूमि से लेकर दिव्य ब्रह्मपुर तक में है (मुक्तावस्था तक में है), वह आत्मा हृदयाकाश में विद्यमान है। वह मन के भी ऊपर प्राणों का और इन्द्रियों का सञ्चालक है। वह अन्न में (समस्त प्रकृति में) प्रविष्ट है। उसे ही हृदय में धारण करके आत्म–विज्ञान से अपने आत्मा में ही ब्रह्मवेत्ता देखते हैं। वह आनन्द रूप और अमृत है। वह प्रकाश रूप है।

समस्त उपनिषदें अपने–अपने ढंग से इस ब्रह्म का विवरण हमें देती हैं। यही ब्रह्म, यही प्यारा परमात्मा एकमात्र हमारा अवलम्ब है। हम उसकी तुलना में अत्यन्त छोटे और वह अनन्त है। उसी के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के दश नियमों में एक नियम इस प्रकार दिया है–

ईश्वर सच्चिदानन्द–स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है

श्वेताश्वतर उपनिषद् की कई श्रुतियों में ईश्वर का इसी प्रकार का स्पष्ट वर्णन है–

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनाम्,
एकं बीजं बहुधा यः करोति
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः,
तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥ (श्वेताश्वतर ६।११-१२)

वह देव अकेला ही सर्व-भूतों में (प्राणियों और अप्राणियों में) अत्यन्त सूक्ष्मता से छिपा हुआ है, वह सर्वव्यापी, सर्वप्राणियों का अन्तरात्मा (अन्तर्यामी) है। शरीर के बन्धन में आये हुए जीवात्माओं के कर्म-फलों की व्यवस्था करने वाला अध्यक्ष है, सर्वभूतों के भीतर वास करने वाला, संसार का साक्षी अर्थात् सब कुछ देखने वाला है। वह ज्ञानस्वरूप, निर्द्वन्द्व, सत्त्व गुण, रजोगुण और तमोगुणों से रहित है।

वह अकेला सबको वश में करने वाला, अखण्ड, स्वयं निष्क्रिय, एक साधारण बीज से बहुरूपों की सृष्टि रचता है। जो धीर योगी और आस्तिक ज्ञानी उस आत्मस्थ देव को देखते हैं। वे निरन्तर सुखमय जीवन प्राप्त करते हैं; दूसरे व्यक्तियों को ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता।

ईश्वर और जीव में समानता-

१. ईश्वर भी चेतन सत्ता है, और जीव भी चेतन सत्ता है।

२. ईश्वर को किसी ने नहीं बनाया, जीव को भी किसी ने नहीं बनाया, दोनों ही स्वयंभू हैं।

३. ईश्वर अजन्मा है, जीव भी अजन्मा है।

४. ईश्वर अमर और नित्य रहने वाला है, जीव भी सदा रहने वाला है।

५. ईश्वर के टुकड़े या खण्ड या अंश नहीं होते और न जीव के खण्ड या अंश होते हैं। दोनों ही अदिति हैं।

६. ईश्वर समस्त संसार का बनाने वाला अर्थात् सृष्टिकर्ता है। जीव शरीर में आने के बाद केवल छोटे-छोटे काम कर सकता है।

७. ईश्वर न तो जीव बन सकता है, और न जीव परमेश्वर बन सकता है। ईश्वर की सत्ता में जीव की सत्ता सदा विद्यमान रहती है।

८. ईश्वर समस्त सृष्टि में वास करता है। इसलिए हम उसे **विराट्**

पुरुष कहते हैं। सृष्टि का ऐश्वर्यशाली स्वामी होने के कारण ईश्वर को हम इन्द्र भी कहते हैं। शरीर में (५ कोशों के शरीर में–अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों वाले) रहने के कारण जीव को भी हम **पुरुष** कहते हैं, शरीर यद्यपि जीव का बनाया हुआ नहीं है, किन्तु शरीर का वह स्वामी है; शरीर के माध्यम से कार्य करने के कारण उसे हम इन्द्र भी कहते हैं।

जीव और ईश्वर में भेद–१. ईश्वर और जीव दोनों भिन्न-भिन्न हैं। न कभी जीव ईश्वर बन सकता है, न कभी ईश्वर जीव बनेगा। दोनों के अलग-अलग स्वतन्त्र अस्तित्व हैं।

२. ईश्वर एक है, जीव असंख्य हैं।

३. ईश्वर प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त महान् है, और जीव या जीवात्मा बहुत छोटा, **अणु** मात्र या बिन्दु मात्र सत्ता का है।

४. ईश्वर विस्तार में अनन्त है–अनन्त मापों वाला है। सर्वव्यापक है, जीव एक-देशी अणुमात्र है।

५. परमात्मा सृष्टि का बनाने वाला, और इस दृष्टि रचना का निमित्त कारण है। जीवात्मा कोई सृष्टि नहीं रचता। वह शरीर में एक बिन्दुमात्र स्थान पर रहने वाली सत्ता है। शरीर में इसकी आत्मा का निवास स्थान मस्तिष्क के उस बिन्दु पर है जहाँ समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ अपना-अपना ज्ञान फोकस कर रही हैं। जीवात्मा और इन्द्रियों की संवेदना के इस फोकस बिन्दु के बीच में मन की छोटी सी खिड़की है। मन के छेद में से ज्ञान की संवेदनायें बड़ी तीव्रता से आत्मा तक पहुँच रही है।

६. जीवात्मा के लिए परम पुरुष परमेश्वर ने कृमि-कीट, पशु, पक्षी, मनुष्यादि की योनियाँ बड़े प्यार से दी हैं। शरीर जीवात्मा के ज्ञान, कर्म और भोग का साधन है।

परमात्मा बिना शरीर के अपनी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता से अपने समस्त कार्य करता है। जीवात्मा के समस्त कार्य अपने भोग या ज्ञान के लिए होते हैं। परमेश्वर कोई भी कार्य अपने लिए नहीं करता।

७. जीवात्मा कार्य करने में स्वतन्त्र, किन्तु फल भोगने में परमात्मा की व्यवस्था के अधीन है।

८. जीवात्मा अपने कल्याणार्थ परमात्मा की व्यवस्था से विभिन्न शरीर पाता रहता है। परमात्मा को अपने किसी कार्य के लिए शरीर में जन्म लेने

की आवश्यकता नहीं पड़ती। शरीर के माध्यम से काम करने वाली सत्ता निर्बल और अल्पशक्ति कहलाती है। निराकार प्रभु अपनी सर्वव्यापक सत्ता और सर्वज्ञता मात्र से लोक की सभी चेष्टाओं का संचालन करता रहता है। परमात्मा को अपने किसी कार्य करने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है।

अपाणि-पादो जवनोगृहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।। (श्वेताश्वतर, ३।१९)

उस परम पुरुष के न हाथ हैं, न पैर, किन्तु वह स्वसंकल्प से सब जगह जाता है और सब कुछ ग्रहण करने में सफल होता है। बिना आँखों के वह देखता, और बिना कानों के वह सुनता है। जो कुछ जाना जा सकता और जानने योग्य है, वह सब जानता, किन्तु किसी अन्य की सामर्थ्य नहीं, कि उसे जान सके। ज्ञानी और विद्वान् इसी सत्ता को परम पुरुष, सबसे महान् कहते हैं।

९. प्रकृति-रूप वृक्ष पर दो सुन्दर पक्षी बैठे है—एक तो बड़ा सुपर्ण और दूसरा छोटा। ये दोनों साथ रहने वाले, सुपक्ष वाले, सुन्दर पंखों वाले हैं। दोनों आत्म-भाव से मिले हुए है, अर्थात् सयुज हैं, ईश्वर कभी जीव को छोड़ता नहीं, जीव कभी ईश्वर की गोद में से निकल कर भाग नहीं सकता। दोनों समान ख्याति वाले **सखा** है। जो छोटा पक्षी जीव है, वह इस वृक्ष के शुभ-अशुभ फलों के स्वाद का आनन्द लेता है। दूसरा बड़ा सुपर्ण केवल दूर-दूर से, प्रकृति में बिना लिप्त हुए, जीवात्मा के कर्मों का साक्षी-मात्र रहता है— **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्लमं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशशीति।।
(श्वेताश्वतर ४।६।

मेरे इस परमपुरुष को न कोई ऊपर की दिशा से पकड़ सकता है; न तिरछी ओर से, न बीच से। मेरे इस महान् यशस्वी प्रभु की कोई प्रतिमा नहीं, कोई मूर्ति नहीं—

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभूत्।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।। (श्वेताश्वतर ४।१९)

'ब्रह्माण्ड की खोज और महर्षि दयानन्द

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

विगत शिक्षक दिवस के अवसर पर प्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं वैज्ञानिक, प्रोफेसर यशपाल का "व्यवस्था के लिए मिसाल बनें गुरु" शीर्षक से दैनिक हिन्दुस्तान समाचार पत्र में एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें लेखक ने लिखा है कि एक बार एक बच्चे का पत्र उन्हें प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था कि 'यशपाल अंकल, सब कहते हैं कि इसने इसकी खोज की और उसने उसकी। फिर ब्रह्माण्ड की खोज किसने की? बड़ा बेहतरीन सवाल था। शायद जवाब मेरे पास भी नहीं था। लेकिन अगर बच्चे कि नजर से देखें तो जवाब मिलता है कि जब बच्चा जन्म लेता है चिहूं-चिहूं करता हुआ दुनिया देखता है, तो वह ब्रह्माण्ड की खोज करता है। यह एक सतत प्रक्रिया है। इसलिए हर इंसान ब्रह्माण्ड की खोज करता है।' इस लेख को पढ़कर इस पर कुछ लिखने की प्रेरणा हुई। बच्चे का प्रश्न स्वाभाविक है। हमें लगता है कि इस प्रश्न के दो भाग हैं। पहला यह कि यह ब्रह्माण्ड अस्तित्व में कैसे आया। दूसरा कि इस ब्रह्माण्ड के यथार्थ रहस्य को किसने कब व कैसे जाना? हमें लगता है कि पहले प्रश्न का पूरा उत्तर हमारे वैज्ञानिकों के पास नहीं है। उन्होंने जो कल्पनायें की हैं, वह आधी-अधूरी व सत्य से विपरीत हैं, जिसका कारण कि उनका ईश्वर को न जानना और न मानना है। इसका उत्तर है कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं, एक चेतन व दूसरे जड़ या निर्जीव। चेतन सत्तायें भी दो प्रकार की हैं। इसमें एक, केवल एक, बड़ी सत्ता है जिसे ईश्वर कहते हैं और उससे भिन्न कुछ सूक्ष्म वा अनन्त चेतन सत्तायें, जिनकी संख्या जीव या मनुष्य के ज्ञान में अनन्त हैं, उन्हें जीवात्मा कहते हैं। ईश्वर सहित इन सभी सत्ताओं का ज्ञान जीवात्मा-जीवात्माओं या मनुष्यों को तब तक नहीं हो सकता जब तक कि स्वयं ईश्वर मनुष्य योनि में उन्हें इनका ज्ञान न कराये। ईश्वर के अपने नियम हैं। वह कारण प्रकृति से इस ब्रह्माण्ड की रचना करता है। कारण प्रकृति जड़ है एवं अतिसूक्ष्म है। कारण अवस्था में वह सत्, रज व तम गुणों की साम्यावस्था में होती है। ईश्वर सृष्टि या ब्रह्माण्ड की रचना इसलिए कर पाता है कि वह सत्, चित्त व आनन्दस्वरूप, निराकार,

सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तरयामी, सर्वज्ञ, सृष्टिकर्ता आदि गुणों से युक्त है। इससे पूर्व अनादि काल से उसने असंख्य बार सृष्टि को बनाया है और उसका समय पूरा होने पर प्रलय की है। सृष्टि रचने व पलय करने का उसे पूरा-पूरा अनुभव है। ईश्वर में अनन्त गुण, कर्म व स्वभाव हैं। इससे वह सगुण सिद्ध होता है। ईश्वर में जो-जो गुण हैं उनके होने से वह सगुण जाना जाता है और जो-जो गुण नहीं हैं, उनके न होने से वह निर्गुण कहा जाता है। सगुण होने का अर्थ साकार होना कदापि नहीं है। इसी प्रकार निर्गुण होने का अर्थ निराकार भी नहीं है। पाठक विचार करने पर यह पायेंगे कि ईश्वर के जिन गुणों का उल्लेख किया गया है वह पूर्णतः तर्क संगत है और उन गुणों की सत्यता, प्रमाण व सिद्धि का प्रमाण यह जीता-जागता-साकार ब्रह्माण्ड है जिसे हम अपने आँखों से देख रहे हैं। समस्त प्राणीजगत यथा मनुष्य, पशु कीट, पतंग जलचर व नभचरों आदि को ईश्वर ने बनाया है। अन्य कोई सत्ता न तो इन्हें बना सकती है, न चला सकती है और न ही इसके प्रलय करने की सामर्थ्य रखती है। कोई अन्य सत्ता सृष्टि व ब्रह्माण्ड की रचना करने का दावा भी नहीं करती है, इसलिए भी ईश्वर का सृष्टिकर्तत्व सिद्ध है। वैज्ञानिकों के लिए या असिद्ध इसलिए है कि वैज्ञानिक जड़, स्थूल अथवा पार्थिव जगत का अध्ययन करते हैं। ईश्वर स्थूल पदार्थ है ही नहीं, अतः वैज्ञानिकों द्वारा किये जाने वाले अध्ययन की सीमाओं के बाहर होने के कारण वह ईश्वर को जान नहीं पा रहे हैं। एक ना एक दिन उन्हें अपना दृष्टिकोण बदलना ही होगा। उन्हें वेद, उपनिषद व दर्शन के आचार्यों के बुद्धि व युक्तिसंगत विचारों को सुनना व समझना होगा। उन पर निष्पक्ष चिन्तन करने पर वह पायेगें कि जीवात्मा की भांति एक चेतन, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान तत्व और भी है। उसे समझ लेने पर ही वह यथार्थ ज्ञानी कहला सकेंगे। वह दिन इस सृष्टि के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण दिन होगा जिस दिन वह सत्य, चेतन, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सृष्टिकर्त्ता आदि गुणों से युक्त ईश्वर को समझ लेंगे, जान लेंगे व मान लेंगे। यथार्थ आध्यात्मवादियों व वेदानुयायियों के लिए भी वह दिन बहुत शुभ होगा क्योंकि उस दिन सत्य को मानने व मनवाने रूपी उनके कर्तव्य की पूर्ति व सफलता होगी। यहाँ यह कहना भी उपयुक्त होगा कि आर्य समाज में

भी अनेक वैज्ञानिक हुए हैं। डॉ. प्रो. सत्य प्रकाश सरस्वती, इलाहाबाद विश्व विद्यालय, इलाहाबाद व डॉ. प्रो. राम प्रकाश प्रवर वैज्ञानिक रहे हैं जिन्होंने रसायन शास्त्र के क्षेत्र में शोध कार्य किये हैं और सहस्रों विद्यार्थियों को रसायन शास्त्र पढ़ाने के साथ उन्हें शोध कार्य की प्रेरणा, निर्देशन व सहयोग किया। इन्हें, इनके पूर्ववर्ती व समकालीन किन्हीं भी आर्य वैज्ञानिकों को कभी यह शंका नहीं हुई कि ईश्वर नहीं है और यह सारा ब्रह्माण्ड स्वमेव बना है। लेकिन यह अपने से बड़े वैज्ञानिकों का विरोध नहीं कर सकते। यही कारण है कि विज्ञान के शिरोमणि पुरुष अभी सोचने को भी तैयार नहीं हैं कि एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनेकों बार सृष्टि की उत्पत्ति कर उसका संचालन व प्रलय करने वाली एक अनुभवी चेतन सत्ता इस ब्रह्माण्ड में हो सकती है या विद्यमान है। वेद व दर्शनों के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि या ब्रह्माण्ड को जड़-कारण-प्रकृति के सूक्ष्म कणों, सत्, रज व तम से रचा या बनाया है। ईश्वर के द्वारा सृष्टि बनाने का विचार करने के बाद साम्यावस्था भंग हुई और इसमें विकार होने आरम्भ हुए। क्रम से महतत्व, अहंकार, पांच तन्मात्रायें, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मन्द्रियां, मन, बुद्धि चित्त एवं स्थूल जगत आदि अस्तित्व में आये। इसका वर्णन ऋग्वेद व वैशेषिक दर्शन में उपलब्ध है जिसे वहाँ देखा जा सकता है।

अब यह देखना है कि ब्रह्माण्ड की रचना के बाद इसकी उत्पत्ति के रहस्य को किसने कब व कैसे जाना या खोजा। इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें किसी मनुष्य, स्त्री या पुरुष का नाम बताना है। इसके लिए पहली बात तो यह जानना है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने बड़ी संख्या में स्त्रियों व पुरुषों को जन्म दिया। इसे अमैथुनी सृष्टि कहते हैं। इन आदि मनुष्यों में चार व्यक्ति अग्नि, वायु आदित्य व अंगिरा के नाम से जाने जाते हैं। यह माना जाता है कि यह चार लोग सब मनुष्यों में सबसे योग्य, पात्र व पवित्र थे जिसका आधार इनके किसी पूर्व कल्प का जन्म व उसमें किए गये शुद्ध, पवित्र, निष्काम कर्म व योगाभ्यास आदि कार्य थे। इन्हें ईश्वर ने क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का ज्ञान दिया। ईश्वर सर्वान्तरयामी अर्थात् जीवात्मा से भी सूक्ष्म होने तथा सर्वव्यापक होने के कारण जीवात्माओं के भीतर भी विद्यमान रहता है। उेस जीवात्मा या जीवात्माओं को अपना सन्देश देने के लिए किसी बाह्य साधन या वाक् आदि इन्द्रिय

की आवश्यकता नहीं होती। जीवात्मा के भीतर ही वह अपना वेदों का ज्ञान स्थापित कर देता है। यहाँ यह भी जानने योग्य है कि वेदों का ज्ञान, वेद की भाषा में इसके शब्द-अर्थ-सम्बन्ध सहित दिया गया था और वह ऋषि वेद के प्रत्येक पद, शब्द, वाक्य या पंक्ति का अर्थ जान गये थे तथा उन्हें वेद के निर्भ्रान्त ज्ञान में किसी प्रकार का कोई संशय नहीं था। यह असम्भव नहीं, अपितु सम्भव है। अन्य कोई सम्भावना या विकल्प भी नहीं है। यह भी जानने योग्य है कि सभी मनुष्यों को भाषा का ज्ञान भी ईश्वर से प्राप्त हुआ था, यदि न होता तो वह अपना जीवन निर्वाह न कर पाते। यदि ऐसा नहीं मानते हैं तो ईश्वर का सर्वशक्तिमान स्वरूप 'यथा नाम तथा गुण' नहीं रहता है, वह स्वरूप सीमित व अल्प-शक्तिमान रहता है। इस प्रकार इन चार ऋषियों को चार वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्होंने वेदों के ज्ञान को ब्रह्मा जी को दिया और परस्पर भी आदान-प्रदान किया तथा इसके बाद अन्य स्त्री व पुरुषों को पढ़ाया। यहाँ हमें यह ज्ञात होता है कि यह पाँचों व्यक्ति ईश्वर व इस ब्रह्माण्ड को जानने वाले प्रथम पुरुष थे। यह घटना या इतिहास, 1,96,08,53,113 वर्ष पुराना है। यदि हम इसे अधिक विस्तार से जानना चाहें तो कठिन है क्योंकि हमारा अधिकांश साहित्य विदेशियों व विधर्मियों ने नष्ट कर दिया। बीच में वेदों के पठन-पाठन में अवरोध उपस्थित हुआ जिसके कारण वेदाध्ययन के अव्यवस्था का शिकार होने से भी सभी तथ्य पूर्णतः विदित व सुरक्षित नहीं है, वह या तो नष्ट कर दिये गये या हो गये। समझदार व विवेकी लोग जितने तथ्य उपस्थित होते हैं उन्हें प्राप्त कर पहले उनकी रक्षा करते हैं और शेष के लिए प्रयास करते हैं। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है कि हमारे विदेशी वैज्ञानिकों में इसके प्रति कोई रुचि नहीं है। ऐसा भी लगता है कि वह कुछ अहं का शिकार हैं जिससे तथ्यों के स्वीकार करने में बाधा आ रही है।

संक्षेप में कुछ चर्चा उन तथ्यों की भी कर लेते हैं जो इतिहास से सम्बन्धित हैं। सृष्टि के आरम्भ में जब जनसंख्या बढ़ी तो समस्यायें पैदा हुई और लोगों ने खाली पड़ी हुई विस्तृत पृथिवी के दूरस्थ भागों में जाकर बसना आरम्भ किया। दूर जाने के कारण उनका सम्बन्ध व सम्पर्क अपने पूर्व पुरुषों से क्षीण हो गया जिससे उनकी भाषा व ज्ञान में भी अवरोध, परिवर्तन व विकार आये। भाषा में विकारों व अपभ्रंसों के कारण अलग-अलग

स्थानों पर अलग-अलग भाषायें बनने लगीं और इस 1.96 अरब वर्षों के समय में वैदिक भाषा संस्कृत अलग-अलग स्थानों पर अपना स्वरूप खो कर भिन्न-भिन्न भाषाओ में परिवर्तित हो गई परन्तु सब भाषाओं का आधार वेदों की प्राचीन संस्कृत ही है जिसके अनेक प्रमाण वैदिक विद्वानों के पास आज भी उपलब्ध है। जिस प्रकार भाषाओं में परिवर्तन आया, समय के साथ-साथ दूरस्थ स्थानों में वेदों का ज्ञान, वेदों के संस्कृत में होने व संस्कृत का प्रचलन उन स्थानों में न होने के कारण, क्षीण होता रहा और कालान्तर में विलुप्त व समाप्त हो गया। दूरसथ देशों व प्रदेशों में ही नहीं अपितु अपने आर्यावर्त्त में भी वेदों की परम्परा, लगभ 5,000 वर्ष पूर्व हुए महाभारत युद्ध के पश्चात, कई कारणों से बाधित हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि सर्वत्र अविद्या व अज्ञान का अन्धकार फैल गया। इसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों व शूद्रों को वेदाध्यन से ही वंचित कर दिया गया। क्षत्रियों व वैश्यों को भी वेदाध्ययन कराने में उपेक्षा की गई। इस प्रकार कुल जनसंख्या का लगभग 12-13 प्रतिशत भाग ही वेदाध्ययन कर सकता था। उहोंने भी आलस्य प्रमाद किया जिससे अज्ञान का अन्धकार और विस्तृत हो गया। वेदों का नाम लेकर जो यज्ञ किए जाते थे उनमें पशुओं को मार कर उनके मांस से आहुतियां दी जाने लगी और उन पशुओं का शेष मांस का भक्षण यजमान व पुरोहित करने लगे। ऐसे यज्ञीय-हिंसा के समय में भगवान बुद्ध का आविर्भाव हुआ जिन्होंने यज्ञों में हिंसा का विरोध किया। इसके परिणाम से लोगों ने परम्परागत वैदिक धर्म जो पाखण्ड, कुरीतियों, अन्धविश्वासों से आप्लावित हो गया था, इसके अनुयायी बौद्धमत को अपनाने लगे। बौद्ध मत की संख्या बढ़ती चली जा रही थी और दूसरी ओर परम्परागत वेद-हिन्दू मत के अनुयायियों की संख्या कम हो रही थी। कालान्तर में बौद्ध मत के अनुयायियों की संख्या कल्पनातीत बढ़ गई। यह ध्यातव्य है कि बौद्ध मत ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता जिसका प्रमुख कारण हमारे परम्परावादी वेद-हिन्दू मत के वह लोग थे जिन्होंने ईश्वर व वेद के नाम पर यज्ञों में हिंसा व अधर्म किया था और निर्दोष पशुओं पर अमानुषिक अत्याचार किए थे। लगभग 2,500 वर्ष पूर्व स्वामी शंकराचार्य जी का आविर्भाव हुआ जो वेदों पर आधारित उपनिषदों के ज्ञान से परिपूर्ण थे। उनकी तर्कशक्ति व ऊहा बहुत उच्च कोटि की थी। उन्होंने बौद्ध मत के विचारों व सिद्धान्तों में जो खामियां थी वह शास्त्रार्थ

में असत्य सिद्ध की है और यह सिद्ध किया कि संसार में केवल ईश्वर का ही अस्तित्व है। ईश्वर के अतिरिक्त किसी सत्ता या पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। यह संसार हमें भ्रान्ति के कारण दिखाई देता है, ऐसा उनका मत था। इससे बौद्धों का पराभव होकर पुनः ईश्वरवाद को लोगों ने अपनाया परन्तु जिनके हाथ में धार्मिक सत्ता व अधिकार थे, वह मानसिक रूप से बदले नहीं और बौद्धमत के पराभव से पूर्व की स्थिति जारी रही। इस प्रकार चलते-चलते 19वीं शताब्दी आ गई। भारत के सौभाग्य व ईश्वर की महती कृपा से लगभग 1863 में गुजरात में टंकारा में जन्में व प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती के शिष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती का आविर्भाव हुआ। उन्होंने ब्रह्मचर्य के तप, योगाभ्यास, गम्भीर अध्ययन व अपनी तीक्ष्ण मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों-क्षमताओं से स्थिति को बदल कर महाभारत से पूर्व का समस्त वैदिक ज्ञान खोज निकाला और वेद, वैदिक ज्ञान व ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के अस्तित्व का सिद्धान्त, जिसे त्रैतवाद कहा जाता है, को संसार व देश भर में प्रतिष्ठित किया। उनके त्रैतवाद के सिद्धान्त से ही ब्रह्माण्ड का यथार्थ स्वरूप जाना जाता है और सभी शंकाओं का निराकरण होता है। इस सिद्धान्त का पालन व योगाभ्यास कर मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार भी कर सकता है। आज हमारे पास वेदों का ज्ञान अपने यथार्थ शब्द-अर्थ-सम्बन्ध सहित व अपने मौलिक स्वरूप में विद्यमान है। आवश्यकता केवल उसके प्रचार व हठधर्मियों से उसको मनवाने की है। वेदेतर सभी विधर्मियों ने भी अपने मत की खामियों को जानकर अब तर्क-वितर्क व शास्त्रार्थ करना छोड़ दिया है। सब अपने घरों में शेर बने हुए है। आज की राजनीति व कानून भी सत्य के निर्धारण में कुछ-कुछ बाधक हैं। असत्य-आस्था को महिमा मण्डित कर "सत्य" का झुठलाया जाता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वरूप को महाभारत काल के बाद महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 ई. व इससे कुछ समय पूर्व जाना था एवं अपेन ज्ञान से ब्रह्माण्ड को खोज लिया था, यह हम कह सकते हैं। महर्षि दयानन्द के विचारों के प्रचार व प्रसार की आज महती आवश्यकता है जिससे सारा देश व विश्व के लोग उनके ब्रह्माण्ड एवं ईश्वर के स्वरूप के बारे में सत्य विचारों से अवगत हो सकेंग। हम विद्वान पाठकों के विचार व सुझाव आमंत्रित करते हैं।

पुनः प्रकाशित पुस्तकें

आर्य-पर्वपद्धति

पं. श्री भवानीप्रसाद रु. 90.00

पर्वों-त्यौहारों तथा महात्माओं, महापुरुषों के जन्मोत्सव, विजयोत्सव व धर्मोत्सव को मनाना हमारी परिपाटी है। आर्य शताब्दी सभा द्वारा स्वीकृत यह पर्व-त्यौहार पद्धतियाँ हमें पर्वों का शुद्ध व सत्यस्वरूप जानने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होंगी। इस पुस्तक से मार्गदर्शन प्राप्त कर समस्त आर्य जगत् में त्यौहार एक विधि से मनाए जाएँ, यही इसका उद्देश्य है।

मेरे पिताः संस्मरण

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति रु. 80.00

कोई व्यक्ति बुरी राहों पर चलकर भी, यदि जीवन को सुधारने का प्रबल संकल्प कर ले, तो वह कल्याण-मार्ग का पथिक बन सकता है-इस उक्ति को चरितार्थ करने वाला स्वामी श्रद्धानन्दजी का यह जीवन इन्द्र जी के यह भावपूर्ण संस्मरण, स्वामीजी की याद को सदैव जीवित रखेंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन, विचार और कार्य इस पुस्तक के माध्यम से देश-विदेश में और अधिक तीव्रता से प्रसारित हो कर सभी को प्रेरित करे, यही इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य है।

श्री कृष्ण चरित

डॉ. भवानीलाल भारतीय रु. 125.00

इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने परिश्रमपूर्वक खोज करके सभी प्रकार की विकृतियों को निकालकर महाभारत के आधार पर, श्रीकृष्ण का लोक कल्याणकारी रूप प्रस्तुत किया है।

यज्ञ थैरैपी

संदीप आर्य रु. 110.00

यज्ञ मात्र कर्मकाण्ड का वस्तु नहीं अपितु बहुमुखी चिकित्सा पद्धति भी है। लेखक ने दर्शाया है कि यज्ञ द्वारा अनेक रोगों का इलाज संभव है।

प्राप्ति स्थान :

विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद,

4408, नई सड़क दिल्ली-6

दूरभाष: 01123977216, 65630255

अक्टूबर २०१३ Registered with Regn. of News Paper for India
वेदप्रकाश R.No. 627/57 Regd. No. DL(DG)-11/8030/2012-14, U(DGO) 01/2013-14 15.07.2013

नया प्रकाशन

मेरे अनुभवः मेरा चिन्तन प्रो. रामविचार रु. 100.00

यह ग्रन्थ न केवल प्रो. रामविचारजी की जीवन यात्रा तथा कार्यों को दर्शाता है, बल्कि यह एक युग की कथा है। त्याग, समर्पण, कर्मठता, लग्न, निष्ठा, स्वाभिमान आदि नैतिक मूल्यों का पाठ है। आप जानेंगे कि 53 वर्षों की इस यात्रा को 'वेद सन्देश' के यशस्वी लेखक प्रो. रामविचारजी ने कैसे प्राध्यापक, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, धन संग्रहकर्त्ता, वक्ता तथा लेखक के रूप में पूरी की। यह मनोरंजक कथा लेखक के जीवन की कुछ मीठी-कड़वी यादें हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक अवश्य लाभान्वित होंगे।

पुनः प्रकाशित पुस्तकें

Quest: The Vedic Answers by Madan Raheja Rs. 125.00

Mr. Madan Raheja's book provide answers to over 150 questions which often beleaguer even the most intelligent mind. An intelligent reading of the book removes many cobwebs in understanding the intricate problems of life and death, pleasures and pains, birth and re-birth, bondage and emancipation etc. and corrects many mistaken notions about God, Soul and Matter.

वैदिक नित्यकर्म विधि रु. 60.00

प्रस्तुत पुस्तक में प्रतिदिन प्रातःकाल उठने से लेकर रात्रि शयन करने तक का विधान निहित है। समय-समय पर विशेष पर्व आदि पर करणीय कर्म भी इसमें हैं। व्यक्तिगत कर्मों के साथ कुछ सामाजिक कार्यों के भी इसमें दिशा-निर्देश हैं।

महात्मा आनन्द स्वामीः सुनील शर्मा रु. 40.00

कुछ नाम ऐसे भी होते हैं जिनकी चर्चा दूसरे के होठों पर होती है और शहद अपने कानों में घुलने लगता है। ऐसा ही एक मीठा नाम है 'महात्मा आनन्द स्वामी।' आईए उनके पावन जीवन की झांकी देखें।

प्रकाशक-अजयकुमार, मुद्रक-अजयकुमार, स्वामी-अजयकुमार, गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6, अजयकुमार द्वारा सम्पादित, प्रिंटर्स-अजय प्रिंटर्स, 1586/C-13, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 में प्रिंट करा, वेदप्रकाश कार्यालय, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6 से प्रसारित किया। न्यायक्षेत्र-दिल्ली।